IJAHERD

I.J.A.H.E.R.D.

Vol. 8 No. 2 February 2024

TABLE OF CONTENTS

Vol. 8 No. 2 February 2024

No.	Author	Topic	Page No.
01	प्रो. पुरुषोत्तम रिछारिया	सल्तनतकालीन वास्तुकला का भारत निर्माण में योगदान: एक तुलनात्मक अध्ययन	3 to 7
02	डॉ. ऊसा मरकाम	भगवान् बुद्ध और विपस्सना का उद्गम: भारत की वैश्विक पहचान में योगदान – एक तुलनात्मक अध्ययन	8 to 10
03	Narendra Kushwaha	Analytical Study on the Patronage of Buddhist and Vedic Religion during the Period of Kanishka	11 to 14
04	Dr. Rahul Hirkane	Analytical Study on the Patronage of Buddhist, Jain and Vedic Religion during Chandragupta Maurya Period	15 to 17
05	अजातशत्रु यादव	जनीश ओशो का दर्शन: बौद्ध और जैन दर्शन के नितांत निकट एक तुलनात्मक अध्ययन एवं हिन्दू दर्शन पर प्रभाव	18 to 21
06	f	Legality of Triple Talaq: A Comparative Study of Its Impact on Indian Muslims with Reference to the Shah Bano Case	221to 24

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 8 No. 2 Fabruary 2024

सल्तनतकालीन वास्तु कला का भारत निर्माण में योगदान: एक तुलनात्मक अध्ययन

प्रो पुरुषोत्तम रिछारिया
प्रभारी प्राचार्य, प्राध्यापक इतिहास
शास. महाविद्यालय बंडा (बेलई) सागर मध्य प्रदेश

प्रो. पुरुषोत्तम रिछारिया
प्रभारी प्राचार्य, प्राध्यापक इतिहास
शास. महाविद्यालय बंडा (बेलई) सागर मध्य प्रदेश
Indian arthur

सारांश
सल्तनतकाल (1206–1526 ई.) भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास में एक ऐसा युग था, जिसमें वास्तुकला के क्षेत्र में बड़े स्तर पर क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। इस युग में भारतीय पारंपरिक शैलियों में इस्लामी, फारसी और तुर्की प्रभाव सम्मिलित होकर एक नई वास्तुशैली – इंडो-इस्लामिक वास्तुकला – का जन्म हुआ। इस शोध-पत्र में सल्तनतकालीन वास्तुकला के योगदान का विश्लेषण किया गया है और इसकी तुलना प्राचीन भारतीय तथा मुगल वास्तुकला से की गई है। कुतुब मीनार और अलाई दरवाज़ा को केस स्टडी के रूप में लेकर यह विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार इन स्थापत्यकृतियों ने भारत के सांस्कृतिक एवं स्थापत्य विकास में आधारशिला का कार्य किया।

परिचय

भारत की वास्तुकला सदियों से विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों और राजनीतिक सत्ताओं के प्रभाव में विकसित होती रही है। सल्तनतकाल, जो गुलाम वंश से शुरू होकर लोधी वंश तक विस्तृत था, ने भारतीय स्थापत्य को एक नई दिशा प्रदान की। इस काल में पहली बार इस्लामी स्थापत्य तत्व – जैसे कि सच्चे मेहराब, गुम्बद, मीनार, ज्यामितीय अलंकरण और अरबी-फारसी लिपियों में शिलालेख – भारतीय शिल्पकला में सम्मिलित हुए।

सल्तनतकालीन शासकों ने न केवल धार्मिक इमारतों का निर्माण करवाया बल्कि सार्वजनिक भवन, मकबरे, दरवाज़े, मदरसे और किले भी बनवाए। इन इमारतों में इस्लामी सादगी और भारतीय जटिलता का एक विलक्षण संगम देखने को मिलता है। यह शोध-पत्र इस सांस्कृतिक मिश्रण के माध्यम से भारत की वास्तुकला में सल्तनत काल के योगदान का विश्लेषण करता है।

सल्तनतकाल (1206 से 1526 ईस्वी) भारतीय उपमहाद्वीप के राजनीतिक, सांस्कृतिक और स्थापत्य इतिहास का एक निर्णायक कालखंड रहा है। इस युग में भारत ने न केवल राजनीतिक दृष्टि से एक नई इस्लामी सत्ता को स्वीकार किया, बल्कि सांस्कृतिक स्तर पर भी एक गहन परिवर्तन देखा। विशेष रूप से वास्तुकला के क्षेत्र में सल्तनतकालीन शासकों ने भारत की पारंपरिक स्थापत्य शैलियों में नई दिशा दी। फारसी, तुर्की और अरबी प्रभावों के साथ भारतीय कारीगरों की कलात्मकता का जब संगम हुआ, तब एक नई शैली – इंडो-इस्लामिक वास्तुकला – का उदय हुआ। यह शैली केवल स्थापत्य नहीं, बल्कि सांस्कृतिक समन्वय का प्रतीक बनी। इस शैली में गुम्बद, मेहराब, मीनार, ज्यामितीय अलंकरण और कुरानिक शिलालेख प्रमुख घटक बन गए।

इस शोध पत्र में सल्तनतकालीन वास्तुकला के इन्हीं योगदानों का विश्लेषण किया गया है। इसकी तुलना न केवल प्राचीन भारतीय स्थापत्य जैसे कि मंदिर वास्तुकला (नागर और द्रविड़ शैली) से की गई है, बल्कि इसके प्रभाव को मुगल स्थापत्य में कैसे रूपांतरित किया गया, इस पर भी प्रकाश डाला गया है। शोध में विशेष रूप से दो स्थापत्य कृतियों – कुतुब मीनार और अलाई दरवाज़ा – का गहन विश्लेषण किया गया है, जो सल्तनतकाल की तकनीकी प्रवीणता और सौंदर्य चेतना को दर्शाते हैं।

इस अनुसंधान का उद्देश्य भारत के निर्माण और सांस्कृतिक विकास में सल्तनतकालीन स्थापत्य के ---

योगदान को रेखांकित करना है, जो अक्सर मुग़ल युग की भव्यता के आगे अनदेखा रह जाता है। यह अध्ययन इस पक्ष को सामने लाता है कि सल्तनतकाल की वास्तुकला ने भारतीय स्थापत्य की नींव को मजबूती प्रदान की, जिसकी छाया आज भी हमारे स्मारकों, मस्जिदों, किलों और शहरी संरचनाओं में देखी जा सकती है।

भारत की वास्तुकला सदियों से विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों और राजनीतिक सत्ताओं के प्रभाव में विकसित होती रही है। सल्तनतकाल, जो गुलाम वंश से शुरू होकर लोधी वंश तक विस्तृत था, ने भारतीय स्थापत्य को एक नई दिशा प्रदान की। इस काल में पहली बार इस्लामी स्थापत्य तत्व – जैसे कि सच्चे मेहराब, गुम्बद, मीनार, ज्यामितीय अलंकरण और अरबी-फारसी लिपियों में शिलालेख – भारतीय शिल्पकला में सम्मिलित हुए।

सल्तनतकालीन शासकों ने न केवल धार्मिक इमारतों का निर्माण करवाया बल्कि सार्वजनिक भवन, मकबरे, दरवाज़े, मदरसे और किले भी बनवाए। इन इमारतों में इस्लामी सादगी और भारतीय जटिलता का एक विलक्षण संगम देखने को मिलता है। यह शोध-पत्र इस सांस्कृतिक मिश्रण के माध्यम से भारत की वास्तुकला में सल्तनत काल के योगदान का विश्लेषण करता है।

उद्देश्य

1. सल्तनतकालीन वास्तुशैली की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करना।
2. सल्तनतकालीन और प्राचीन भारतीय तथा मुगल वास्तुशैली के बीच तुलनात्मक विश्लेषण करना।
3. भारत निर्माण में सल्तनतकालीन स्थापत्य के योगदान को रेखांकित करना।
4. दो प्रमुख स्थापत्य उदाहरणों का केस स्टडी के रूप में विश्लेषण करना।
5. वास्तुशिल्प के माध्यम से सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रिया को समझना।

परिकल्पना

सल्तनतकालीन वास्तुकला न केवल स्थापत्य कला में नवाचारों की परिचायक थी, बल्कि यह भारत के सांस्कृतिक परिदृश्य में एक गहन परिवर्तन का संकेत भी थी। इस शोध की प्रमुख परिकल्पना यह है कि सल्तनतकाल के दौरान विकसित इंडो-इस्लामिक वास्तुकला ने भारत की स्थापत्य परंपरा को एक नई दिशा दी, जिसने प्राचीन भारतीय मंदिर वास्तुकला और बाद की मुगल स्थापत्य शैली के बीच एक सेतु का कार्य किया।
इस परिकल्पना में निम्नलिखित बिंदुओं को सम्मिलित किया गया है:

1. तकनीकी नवाचारों की नींव – सल्तनतकाल में पहली बार भारत में सच्चे मेहराब, सच्चे गुम्बद और मीनार जैसी स्थापत्य तकनीकों का उपयोग किया गया, जिसने स्थापत्य विज्ञान में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया।
2. स्थानीय और विदेशी शैलियों का समन्वय – यह परिकल्पना इस विचार को बल देती है कि सल्तनतकाल की वास्तुकला में फारसी-तुर्की शैलियों के साथ भारतीय शिल्प की जटिलता और सौंदर्यबोध का समावेश हुआ, जिससे एक विशिष्ट “इंडो-इस्लामिक” शैली का उद्भव हुआ।
3. सांस्कृतिक समावेश और विविधता का प्रतीक – सल्तनतकालीन स्थापत्य ने भारत की विविध धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को आत्मसात किया और एक ऐसे स्थापत्य दर्शन को जन्म दिया जो समावेशिता और बहुलता का प्रतीक बना।
4. भविष्य की स्थापत्य परंपराओं पर प्रभाव – यह भी परिकल्पित किया गया है कि सल्तनतकालीन स्थापत्य ने न केवल तत्कालीन स्थापत्य में योगदान दिया बल्कि मुगल युग के भव्य स्थापत्य विकास की आधारशिला रखी, जिससे भारत की अंतरराष्ट्रीय स्थापत्य पहचान निर्मित हुई।
5. भारतीय नगर नियोजन पर प्रभाव – सल्तनतकाल में निर्मित मस्जिदों, मदरसों, किलों, और सरायों ने भारत के शहरीकरण और सार्वजनिक संरचनाओं के विकास में भी योगदान दिया, जो दीर्घकालीन सामाजिक संरचनाओं का हिस्सा बन गया।

सल्तनतकालीन वास्तुकला ने भारत में एक नई स्थापत्य धारा की नींव रखी जो न केवल स्थापत्य कला के स्तर पर बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी भारत की विविधता में एकता को दर्शाती है। इसकी विशेषताएँ बाद की मुगल और आधुनिक वास्तुकला में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं।

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 8 No. 2 February 2024

साहित्य समीक्षा:

- प्रो. पी. ब्राउन ने "Indian Architecture – Islamic Period" में सल्तनतकाल की स्थापत्य नवाचारों पर प्रकाश डाला है।
- डॉ. आर. नाथ की "History of Sultanate Architecture" पुस्तक सल्तनतकालीन स्थापत्य की तकनीकी और सौंदर्यात्मक विशेषताओं का विस्तृत विवरण देती है।
- कैथरीन एशर ने इंडो-इस्लामिक स्थापत्य को एक सांस्कृतिक संगम के रूप में वर्णित किया है जो न केवल स्थापत्य, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।
- विभिन्न पुरातात्त्विक रिपोर्टें जैसे कि ASI की रिपोर्टें कुतुब मीनार और अलाई दरवाज़ा की निर्माण शैली और सामग्री पर प्रकाश डालती हैं।

शोध समस्या:

भारतीय स्थापत्य इतिहास में सल्तनतकालीन वास्तुकला एक अत्यंत महत्वपूर्ण लेकिन अपेक्षाकृत उपेक्षित अध्याय है। प्राचीन भारतीय मंदिर वास्तुकला (जैसे नागर, द्रविड़, वेसर शैली) और मुग़लकालीन भव्य स्मारकों (जैसे ताजमहल, लालकिला, इत्यादि) पर अकादमिक एवं सार्वजनिक दोनों स्तरों पर व्यापक चर्चा होती है, लेकिन सल्तनतकाल की स्थापत्य धरोहर को उसके वास्तविक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक मूल्य के अनुरूप सम्मान नहीं मिला है।

इस शोध में जिन मुख्य समस्याओं की पहचान की गई है, वे निम्नलिखित हैं:

1. ऐतिहासिक उपेक्षा और अध्ययन की कमी

सल्तनतकालीन वास्तुशैली को अक्सर 'मुग़ल स्थापत्य का पूर्वार्द्ध' मानकर इसकी स्वतंत्र पहचान को नजरअंदाज़ कर दिया जाता है। इससे इस युग की मौलिकता, नवाचार और सांस्कृतिक योगदान को गंभीर रूप से कम आंका गया है।

2. पाठ्यक्रम और शैक्षणिक अभाव

इतिहास एवं स्थापत्य विषयक शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में सल्तनतकालीन स्थापत्य को प्रायः संक्षेप में या गौण रूप में पढ़ाया जाता है। विद्यार्थियों और शोधार्थियों को इसकी गहराई से समझ नहीं दी जाती।

3. संरक्षण एवं रख-रखाव की समस्या

कई सल्तनतकालीन इमारतें वर्तमान में जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं। न तो उनके पर्याप्त संरक्षण के प्रयास हो रहे हैं और न ही वे मुख्य पर्यटन स्थलों की सूची में सम्मिलित हैं। यह उनके ऐतिहासिक महत्व की अनदेखी को दर्शाता है।

4. सांस्कृतिक मूल्य की अवहेलना

सल्तनतकालीन स्थापत्य में सांस्कृतिक समन्वय, धार्मिक सहिष्णुता और स्थानीय कारीगरी के उच्च स्तर को प्रतिबिंबित करने वाली विशेषताएँ हैं। लेकिन आम जनमानस और नीति-निर्माताओं के बीच इसकी सांस्कृतिक महत्ता को लेकर पर्याप्त चेतना नहीं है।

5. तुलनात्मक अध्ययन का अभाव

अधिकांश अध्ययन या तो केवल प्राचीन हिंदू वास्तुकला पर केंद्रित रहते हैं या मुग़ल स्थापत्य पर। सल्तनतकाल की वास्तुकला को एक स्वतंत्र स्थापत्य धारा के रूप में विश्लेषण करने के तुलनात्मक दृष्टिकोण में कमी है।

समाधान

- सल्तनतकालीन स्थापत्य का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए।
- संरचनाओं की तकनीकी व सांस्कृतिक विशिष्टताओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाए।
- पुरातात्त्विक सर्वेक्षणों और संरक्षण अभियानों के माध्यम से इन इमारतों की पहचान और सुरक्षा सुनिश्चित की जाए।
- पर्यटन के माध्यम से इन स्मारकों को जन-मानस में लाया जाए।

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 8 No. 2 Fabruary 2024

केस स्टडी

1. कुतुब मीनार (दिल्ली)

- निर्माणकर्ता: कुतुबुद्दीन ऐबक (आरंभ), इल्तुतमिश (पूर्णता)।
- विशेषताएँ:
  - लाल बलुआ पत्थर से निर्मित।
  - अरबी शिलालेख और कुरानिक आयतें।
  - टर्की शैली में शंक्वाकार मीनार, भारत में पहली बार।

2. अलाई दरवाज़ा (दिल्ली)

- निर्माणकर्ता: अलाउद्दीन खिलजी (1311 ई.)
- विशेषताएँ:
  - भारत का पहला 'सच्चा गुम्बद'।
  - घोड़े की नाल के आकार का मेहराब।
  - संगमरमर और लाल पत्थर का संयोजन।
  - इस्लामी ज्यामितीय पैटर्न और अलंकरण।
- महत्व: यह दरवाज़ा सल्तनतकालीन नवाचार का प्रतीक है और मुग़ल वास्तुशैली की प्रस्तावना भी।

सल्तनतकालीन वास्तुकला का विवरण

1. प्रमुख शैलियाँ: इंडो-इस्लामिक शैली, टर्की-फारसी प्रभाव।
2. तकनीकी नवाचार:
   - सच्चे मेहराब और गुम्बद का प्रयोग।
   - चूने के गारे (lime mortar) का प्रयोग।
   - अरबी-फारसी शिलालेख, मोज़ेक और जाली कार्य।
3. संरचनात्मक भेद:
   - मस्जिदें (कुव्वत-उल-इस्लाम), मकबरे (ग्यासुद्दीन तुगलक), मदरसे, किले।
4. स्थानीय कारीगरों की भूमिका: स्थानीय शिल्पियों के कारण कई इमारतों में भारतीय अलंकरण जैसे बेल-बूटे और लताओं का समावेश हुआ।

उपसंहार

सल्तनतकालीन वास्तुकला भारत के सांस्कृतिक और स्थापत्य इतिहास का एक ऐसा अध्याय है, जिसने भारतीय उपमहाद्वीप को स्थापत्य दृष्टि से एक नई दिशा प्रदान की। यह काल न केवल एक राजनैतिक संक्रमण का युग था, बल्कि यह एक सांस्कृतिक समन्वय का काल भी था, जिसमें भारतीय शिल्पकला, इस्लामी स्थापत्य दर्शन, और सामाजिक परिवर्तन एक-दूसरे में विलीन होते नज़र आते हैं।

इस शोध में यह स्पष्ट हुआ है कि सल्तनतकालीन स्थापत्य महज़ मस्जिदों और मकबरों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक संपूर्ण शहरी परिकल्पना, नवीन निर्माण तकनीक, सामाजिक संगठन, और धार्मिक समावेशिता को दर्शाने वाला माध्यम था।

कुतुब मीनार और अलाई दरवाज़ा जैसे स्मारकों के माध्यम से यह देखा गया कि इस काल ने न केवल भारत में सच्चे गुम्बद, मेहराब, मीनार और चूने के गारे जैसी तकनीकों की शुरुआत की, बल्कि उसने प्राचीन हिंदू स्थापत्य के सजीव सौंदर्य को भी आत्मसात किया। इसने एक नई शैली – इंडो-इस्लामिक वास्तुकला – को जन्म दिया, जो बाद में मुग़ल स्थापत्य की नींव बनी।

यह भी समझा गया कि सल्तनतकाल की वास्तुकला ने केवल स्थापत्य क्षेत्र में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अभिव्यक्ति, धार्मिक बहुलता और भारतीयता के पुनर्निर्माण में भी एक केंद्रीय भूमिका निभाई। यह शैली सत्ता का प्रतीक होने के साथ-साथ सांस्कृतिक संवाद का माध्यम भी बनी।

आज जबकि कई सल्तनतकालीन इमारतें समय की मार झेल रही हैं, यह अत्यंत आवश्यक है कि हम उनके संरक्षण के प्रति सजग हों, उनके महत्व को पाठ्यक्रमों, शोध और पर्यटन में स्थान दें, और उन्हें उनके वास्तविक गौरव के साथ प्रस्तुत करें।

इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सल्तनतकालीन वास्तुकला न केवल अतीत का वैभव है, बल्कि वह वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरणा का स्रोत है। इसकी समीक्षा और पुनर्मूल्यांकन आज की भारतीय पहचान और सांस्कृतिक मूल्यों की पुनः परिकल्पना में सहायक हो सकती है।

संदर्भ

1. ब्राउन, पी. (1942)। भारतीय वास्तुकला: इस्लामी काल। डी.बी. तारापोरवाला।
2. नाथ, आर. (1982)। सल्तनत वास्तुकला का इतिहास। अभिनव प्रकाशन।
3. एशर, कैथरीन बी. (1992)। मुगल भारत की वास्तुकला। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) की रिपोर्टें।
5. हवेल, ई.बी. (1913)। भारतीय वास्तुकला का मनोविज्ञान और इतिहास।

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 9 No. 3 March 2025

भगवान् बुद्ध और विपस्सना का उद्गम: भारत की वैश्विक पहचान में योगदान – एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. ऊसा मरकाम
सहायक प्राध्यापक इतिहास
शास. महाविद्यालय बंडा (बेलई) सागर मध्य प्रदेश

डॉ. ऊसा मरकाम
सहायक प्राध्यापक इतिहास
शास. महाविद्यालय बंडा (बेलई) सागर मध्य प्रदेश
Indian arthur

सारांश (Abstract):
भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित विपस्सना साधना भारत की प्राचीनतम ध्यान परंपराओं में से एक है, जो आज वैश्विक मंच पर मानसिक शांति, आध्यात्मिक उन्नयन और आंतरिक विकास का पर्याय बन चुकी है। यह अध्ययन इस बात का विश्लेषण करता है कि विपस्सना तथा बुद्ध की शिक्षाएं कैसे भारत की सांस्कृतिक पहचान को वैश्विक स्तर पर प्रस्तुत करती हैं। साथ ही, यह तुलनात्मक रूप से यह भी दिखाता है कि इस आध्यात्मिक परंपरा की तुलना भारत की अन्य विश्वप्रसिद्ध सांस्कृतिक धरोहरों जैसे सल्तनतकालीन वास्तुकला से कैसे की जा सकती है।

परिचय (Introduction):

भारतवर्ष ने प्राचीन काल से ही मानव सभ्यता को न केवल भौतिक बल्कि आध्यात्मिक व नैतिक दृष्टि से भी अमूल्य योगदान दिए हैं। इन्हीं आध्यात्मिक अवदानों में भगवान् बुद्ध और उनकी ध्यान पद्धति विपस्सना का विशेष स्थान है। बुद्ध, जिन्हें 'शाक्यमुनि' भी कहा जाता है, का जन्म ईसा पूर्व 6वीं शताब्दी में लुंबिनी (वर्तमान नेपाल) में हुआ था, और उन्होंने ज्ञान प्राप्ति के बाद संसार को दुखों से मुक्ति दिलाने हेतु 'धम्म' का उपदेश दिया। बुद्ध का संपूर्ण जीवन, उनके उपदेश और उनके द्वारा प्रतिपादित विपस्सना ध्यान पद्धति आज भी करोड़ों लोगों के जीवन को दिशा दे रही है।

विपस्सना एक प्राचीन भारतीय ध्यान पद्धति है जो बुद्ध द्वारा पुनः खोजी गई और सिखाई गई थी। 'विपस्सना' का शाब्दिक अर्थ होता है – "विशेष प्रकार से देखना" अर्थात वस्तुओं को जैसे वे वास्तव में हैं, वैसे देखना। यह ध्यान पद्धति व्यक्ति को स्वयं के शारीरिक एवं मानसिक अनुभवों को गहराई से देखने, समझने और अंततः मोह, द्वेष, व अज्ञान से मुक्ति दिलाने की प्रणाली है। विपस्सना ध्यान आज न केवल भारत में बल्कि अमेरिका, यूरोप, जापान, ऑस्ट्रेलिया और अन्य देशों में भी अत्यंत लोकप्रिय हो चुका है। यह भारत की उस आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक बन गया है जो सीमाओं से परे मानवता को जोड़ने का कार्य करती है।

वर्तमान युग में जबकि विश्व मानसिक तनाव, अवसाद, और अस्थिरता से जूझ रहा है, तब विपस्सना जैसी शुद्ध एवं वैज्ञानिक ध्यान विधि एक व्यवहारिक समाधान के रूप में सामने आई है। भारत की यह आध्यात्मिक धरोहर न केवल स्वास्थ्य लाभ देती है बल्कि जीवन जीने की शैली को भी रूपांतरित करती है। यह अध्ययन इस बात का विश्लेषण करता है कि किस प्रकार बुद्ध और विपस्सना भारत की सॉफ्ट पावर (soft power) के रूप में उभरते हैं।

इस शोध में हम भारत की सांस्कृतिक पहचान को दो पक्षों से समझने का प्रयास करते हैं—एक ओर भगवान् बुद्ध और उनकी ध्यान परंपरा के माध्यम से भारत की आध्यात्मिक पहचान, और दूसरी ओर सल्तनत कालीन वास्तुकला जैसे कुतुब मीनार व फतेहपुर सीकरी के माध्यम से भारत की भौतिक-सांस्कृतिक पहचान। यह तुलनात्मक दृष्टिकोण हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे भारत की पहचान केवल उसकी इमारतों, किलों और मंदिरों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसकी आध्यात्मिक परंपराएं भी उतनी ही गहरी और प्रभावशाली हैं।

उद्देश्य (Objectives):

इस शोध का मूल उद्देश्य भारत की वैश्विक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पहचान में भगवान् बुद्ध और विपस्सना साधना के योगदान का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्यों को रखा गया है:

1. **भगवान् बुद्ध के जीवन और शिक्षाओं का अध्ययन:-** बुद्ध के ऐतिहासिक, दार्शनिक और सामाजिक योगदान को समझना एवं यह जानना कि उनके सिद्धांत आज भी कैसे प्रासंगिक हैं।
2. **विपस्सना ध्यान पद्धति की उत्पत्ति और विकास का विश्लेषण:-** विपस्सना के मूल स्वरूप, इसके उद्देश्यों, प्रक्रियाओं और वर्तमान युग में इसकी भूमिका को ऐतिहासिक और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करना।
3. **विपस्सना के वैश्विक प्रचार और प्रभाव को रेखांकित करना:-** किस प्रकार विपस्सना पद्धति विश्व के विभिन्न देशों में अपनाई जा रही है और यह भारत की सॉफ्ट पावर के रूप में कैसे कार्य कर रही है, इसका विश्लेषण करना।
4. **भारत की सांस्कृतिक पहचान में आध्यात्मिकता की भूमिका का मूल्यांकन करना:-** भारत की पहचान को केवल भौतिक धरोहरों तक सीमित न रखकर उसमें आत्मिक मूल्यों, ध्यान और धम्म परंपरा के महत्व को स्थापित करना।
5. **तुलनात्मक दृष्टिकोण से भौतिक व आध्यात्मिक प्रतीकों का मूल्यांकन:-** विपस्सना एवं बुद्ध को आध्यात्मिक प्रतीक मानते हुए उनकी तुलना सल्तनत काल की भौतिक वास्तुकला जैसे कुतुब मीनार और फतेहपुर सीकरी से करना, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि भारत की पहचान दोनों स्तरों पर समृद्ध है।
6. **सल्तनतकालीन स्थापत्य की वैश्विक पहचान में भूमिका का अवलोकन:-** यह देखना कि कैसे सल्तनत काल की वास्तुकला, विशेषतः इस्लामी स्थापत्य का भारतीय संस्करण, भारत की वैश्विक सांस्कृतिक छवि को दर्शाता है।
7. **भारत की समग्र छवि को प्रस्तुत करने हेतु संतुलित दृष्टिकोण विकसित करना:-** शोध के माध्यम से यह प्रयास करना कि भारत की वैश्विक पहचान को आध्यात्मिक (बुद्ध एवं विपस्सना) और भौतिक (वास्तुकला) दोनों ही दृष्टियों से संतुलित रूप से प्रस्तुत किया जाए।
8. **शैक्षणिक एवं सामाजिक संदर्भ में विपस्सना को पुनःस्थापित करने के सुझाव देना:-** स्कूलों, विश्वविद्यालयों और सार्वजनिक संस्थानों में विपस्सना के प्रशिक्षण को बढ़ावा देकर मानसिक स्वास्थ्य एवं नैतिक मूल्यों के विकास की दिशा में कार्य करना।

प**रिकल्पना (Hypothesis):**

1. यदि भगवान बुद्ध और विपस्सना के सिद्धांतों को वैश्विक स्तर पर मान्यता मिली है, तो यह भारत की आध्यात्मिक पहचान को विश्व मंच पर स्थापित करता है।
2. विपस्सना एक ऐसी अद्भुत ध्यान प्रणाली है जो आधुनिक चिकित्सा, मनोविज्ञान और योग को भी प्रभावित करती है।

साहित्य समीक्षा (Literature Review):

1. वाल्पोला राहुला की पुस्तक "What the Buddha Taught" में विपस्सना का गहन विवरण मिलता है।
2. गोयनका जी के विपस्सना केंद्रों के अनुभव आधारित दस्तावेज एवं साक्षात्कार।
3. यूनेस्को के अभिलेखों में कुतुब मीनार और फतेहपुर सीकरी का सांस्कृतिक महत्व।
4. डॉ. बिमल माथुर की पुस्तक “Indian Architecture and Identity” में सल्तनतकालीन वास्तु का उल्लेख।

शोध समस्या एवं निदान (Research Problem & Solution):

शोध समस्या:

भारत की वैश्विक सांस्कृतिक पहचान को प्रायः भौतिक वास्तुकला के माध्यम से आँका जाता है। परन्तु आध्यात्मिक प्रतीक जैसे भगवान बुद्ध और विपस्सना को कम महत्व दिया गया है।

निदान:

इस समस्या का समाधान शोध व प्रचार के माध्यम से किया जा सकता है जिससे यह सिद्ध हो कि विपस्सना जैसे आत्मिक अनुभव आधारित दर्शन भी उतने ही प्रभावशाली हैं जितने कि भौतिक संरचनाएँ। स्कूलों, विश्वविद्यालयों और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर विपस्सना को स्थान देकर इसे भारत की सॉफ्ट पावर के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

उपसंहार (Conclusion):

भगवान बुद्ध और विपस्सना न केवल भारत की आध्यात्मिक पहचान हैं, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य और आंतरिक शांति के वैश्विक साधन भी बन चुके हैं। वहीं सल्तनतकालीन स्थापत्य कला भारत की भौतिक सांस्कृतिक धरोहर है। यह तुलनात्मक अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भारत की पहचान आध्यात्मिक और भौतिक—दोनों ही रूपों में समृद्ध है। विपस्सना जैसे तत्वों को यदि समान रूप से महत्व दिया जाए तो भारत की वैश्विक छवि और भी सशक्त हो सकती है।

संदर्भ (References):

1. Rahula, Walpola. What the Buddha Taught. Grove Press.
2. Goenka, S.N. The Art of Living: Vipassana Meditation.
3. UNESCO Heritage Records – Qutub Minar, Fatehpur Sikri.
4. Bimal Mathur. Indian Architecture and Identity, Orient BlackSwan.
5. Vipassana Research Institute, Igatpuri.

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 9 No. 3 March 2025

Analytical Study on the Patronage of Buddhist and Vedic Religion during the Period of Kanishka

Narendra Kushwaha
researcher ancient history
Magadh University Bodh Gaya (Bihar)

Narendra Kushwaha
researcher ancient history
Magadh University Bodh Gaya (Bihar)
Indian arthur

Abstract

The reign of Kanishka (c. 127–150 CE), a prominent ruler of the Kushan dynasty, marked a golden epoch for religious evolution in India. His patronage of Buddhism—particularly the Mahayana sect—is widely acknowledged, yet his support for Vedic/Hindu traditions is equally significant but often underexplored. This research paper analytically explores the dual religious patronage extended by Kanishka, identifying the socio-political, economic, and cultural factors that shaped his policies. By comparing archaeological findings, numismatic evidence, and textual references, the study offers a comprehensive evaluation of the religious dynamics under his rule.

Keywords: Kanishka, Kushan, Mahayana, Vedic, Patronage, Gandhara, Dual Religion, Syncretism, Buddhism, Hinduism

Introduction:

Emperor Kanishka, who reigned during the 2nd century CE, stands as one of the most influential rulers of ancient India—not just in terms of territorial expansion, but also in fostering a profound transformation in the religious and cultural fabric of the Indian subcontinent. His empire, part of the Kushan dynasty, spanned a vast region that included present-day Afghanistan, Pakistan, Northern India, and parts of Central Asia. Such a vast domain necessitated a policy of religious tolerance and inclusivity, which Kanishka embraced with remarkable sophistication.

Kanishka is historically celebrated for his patronage of Mahayana Buddhism, under which the religion underwent formalization and doctrinal expansion. He convened the Fourth Buddhist Council in Kashmir, a major religious synod that helped standardize Mahayana doctrines and facilitated their dissemination across the Silk Road to Central Asia and East Asia. His support played a pivotal role in transforming Buddhism from a regional Indian tradition into a global spiritual movement.

However, while his support for Buddhism is extensively documented, less acknowledged—but equally significant—is his continued respect and support for Vedic or Brahmanical traditions. Archaeological and numismatic evidence reveals that Kanishka did not enforce religious uniformity. His coinage, for instance, bear images not only of the Buddha but also of Hindu deities such as Shiva, Agni, Surya and Skanda. This inclusion is indicative of his political acumen—where religious s

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 9 No. 3 March 2025

ymbols were used as instruments of imperial unity and legitimacy across different faith communities within his vast, multi-ethnic empire.

Inscriptions like the Rabatak Inscription, which mentions the adoption of Sanskrit and the recognition of Indian deities and cultural norms, also support the view that Kanishka sought to harmonize Buddhist and Vedic practices rather than prioritize one over the other. He fostered an environment where religious plurality and syncretism thrived, facilitating dialogue and coexistence between varying traditions.

Moreover, Kanishka's era was characterized by Gandhara and Mathura art, which saw depictions of both Buddhist and Brahmanical iconography, often sharing stylistic elements. This aesthetic confluence further highlights the integration of ideas and beliefs across religious spectrums.

Thus, Kanishka's patronage should be viewed not through a narrow lens of religious preference but as part of a broader state policy—one that embraced and promoted multi-religious participation, cultural diplomacy, and ideological inclusivity. This makes his reign a foundational moment in Indian history, reflecting a model of religious co-patronage rarely seen at such an imperial scale.

The present study aims to explore this unique synthesis of religious traditions under Kanishka's rule by analyzing textual, numismatic, architectural, and epigraphic sources, thereby reconstructing a more balanced understanding of his spiritual legacy and its enduring influence on South and Central Asian civilizations.

Objectives:

1. To evaluate the extent and nature of Kanishka's patronage to both Buddhism and Vedic religion.
2. To analyze historical sources including coins, inscriptions, and Buddhist texts.
3. To study the syncretic cultural developments in the Kushan Empire.
4. To explore how religious patronage influenced state policies and society.
5. To examine the long-term legacy of Kanishka's religious policies.

Hypothesis:

"Emperor Kanishka's simultaneous patronage of both Buddhist and Vedic religions was not merely a reflection of personal belief but a strategic, political, and cultural instrument designed to consolidate imperial authority, promote socio-religious harmony, and enhance diplomatic ties across his diverse empire."

This hypothesis is based on the following core assumptions:

- Religious Pluralism as State Policy:- Kanishka's empire was vast, multi-ethnic, and religiously diverse. The simultaneous support of Mahayana Buddhism and Vedic traditions was likely a deliberate state policy aimed at integrating different regions, sects, and cultural identities. This dual patronage fostered a stable political environment conducive to trade, administration, and cultural expansion.
- Iconographic Evidence as Political Messaging:-MThe portrayal of both Buddhist and Hindu deities on Kanishka's coins and monuments was a form of imperial propaganda, projecting the king as a universal ruler (Chakravartin) above sectarian divides. The visual symbology on coins—featuring Buddha on one side and Agni or Shiva on the other—supports the idea of calculated religious inclusivity.
-

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 9 No. 3 March 2025

- Cultural Syncretism as a Tool of Unification:- The hypothesis also assumes that Kanishka recognized the value of cultural syncretism—especially through the Gandhara and Mathura schools of art—which blended Greco-Roman, Central Asian, Buddhist, and Brahmanical elements. This artistic harmony reflects a broader ideological aim: to unify people through shared aesthetic and religious values.
- Mahayana Promotion as Imperial Ideology:- While Kanishka's sponsorship of Mahayana Buddhism is well-recorded (notably the 4th Buddhist Council), this was likely intended to project a universalist and missionary vision of kingship. Mahayana's emphasis on compassion and global salvation aligned with imperial ideals of welfare and spiritual authority.
- Vedic Patronage for Traditional Legitimacy:- At the same time, the maintenance of Vedic rituals, language (Sanskrit), and deities ensured continuity with older Indian traditions, appealing to the Brahmanical elite and local rulers, thereby legitimizing Kanishka's rule among orthodox communities.
- Geopolitical Positioning:- As the ruler of a trade-based empire linked to China, Persia, and the Roman world, Kanishka likely understood that religious diplomacy—especially through Buddhism—would facilitate cross-cultural interactions, while internal harmony was best maintained by acknowledging the deep-rooted Vedic systems still prevalent across his domains.
- Supporting Proposition:- If the hypothesis holds true, it would imply that Kanishka's dual patronage was a deliberate model of religious diplomacy—a prototype for future Indian rulers who sought to govern diverse societies without enforcing rigid religious orthodoxy.

Research Problem and Solution:

Problem:

Most academic focus has been on Kanishka's Buddhist contributions, neglecting the Vedic dimension of his reign. This creates a skewed understanding of the religious fabric of the Kushan period.

Solution:

A holistic interdisciplinary analysis using archaeological, textual, and art historical evidence can offer a more balanced view. Integrating perspectives from both religious traditions reveals the complexity and inclusiveness of Kanishka's rule.

Literature Review:

1. Romila Thapar discusses the evolution of Mahayana Buddhism during Kushan rule and political motivations in her works.
2. Dr. A.K. Narain emphasizes Kanishka's numismatic contributions and his role in Buddhist councils.
3. John Boardman and Susan Huntington explore the Gandhara art influenced by Greco-Buddhist aesthetics during his rule.
4. Rajendra Prasad's epigraphy studies highlight inscriptions suggesting Vedic yajnas and the involvement of Brahmins in state affairs.

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 9 No. 3 March 2025

Outcomes:

1. Identification of Kanishka as a ruler who adopted inclusive religious policies for political integration.
2. Greater understanding of Mahayana Buddhism's state-sponsored expansion.
3. Recognition of Vedic elements coexisting with Buddhist practices in Kushan society.
4. Insights into ancient models of religious tolerance and their relevance today.

Case Studies:

Case Study 1: Rabatak Inscription

Discovered in Afghanistan, this inscription mentions Kanishka's support for Indian languages and lists multiple deities—both Buddhist and Brahmanical—indicating inclusive state policy.

Case Study 2: Kanishka's Coins

Kanishka's coins feature depictions of Buddha alongside Vedic deities like Shiva and Agni. The coins reflect a calculated religious syncretism appealing to multiple faiths under his rule.

Conservation:

1. ASI conservation initiatives in Gandhara sites like Taxila and Mathura which preserve Buddhist stupas and Vedic-style shrines from the Kushan era.
2. UNESCO efforts to protect cultural heritage in regions like Bamiyan and Surkh Kotal, which date back to Kanishka's reign.
3. Publications by the National Museum, Delhi, on Kushan-era iconography and its preservation.

Conclusion:

Kanishka's reign stands as a unique example of a ruler who adeptly balanced patronage between two major Indian religious traditions—Buddhism and Vedic Hinduism. His political pragmatism, combined with genuine cultural openness, laid the foundation for a rich legacy of syncretic religious expression. By promoting both traditions, Kanishka not only expanded the spiritual horizons of his empire but also contributed to the global diffusion of Indian culture.

References:

1. Thapar, Romila. A History of India, Vol. I. Penguin Books.
2. Narain, A.K. The Coin Types of the Indo-Greeks and Indo-Scythians. Indian Numismatic Studies.
3. Huntington, Susan L. The Art of Ancient India: Buddhist, Hindu, Jain.
4. Boardman, John. The Diffusion of Classical Art in Antiquity.
5. Prasad, Rajendra. Epigraphic Evidence of Religious Pluralism in Ancient India.
6. UNESCO World Heritage Reports.
7. ASI Reports on Gandhara and Kushan Sites (2020-2023).
8. National Museum Publication on Kanishka's Coins and Iconography.

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 9 No. 3 March 2025

Analytical Study on the Patronage of Buddhist, Jain and Vedic Religion during Chandragupta Maurya Period

Dr. IRahul Hirkane
Assistant Professor History
Dr. h.s. Gour (Central) University, Sagar (M.P.)

Dr. IRahul Hirkane
Assistant Professor History
Dr. h.s. Gour (Central) University, Sagar (M.P.)
INationalarthur

Abstract
The reign of Chandragupta Maurya (321–297 BCE), founder of the Maurya Empire, marked a transformative period in Indian religious history. This paper explores the religious dynamics and patronage of Buddhism, Jainism, and Vedic religion during his rule. Through literary, archaeological, and historical sources, it evaluates the extent and nature of royal support extended to these traditions. While Chandragupta initially upheld Vedic practices under the guidance of Chanakya, he later embraced Jainism under Bhadrabahu's influence. Simultaneously, early support for Buddhist institutions set the stage for Ashoka's later full-scale patronage. The paper concludes by examining how such religious pluralism under Chandragupta contributed to India's socio-political stability and philosophical richness.

Keywords : Pluralism, Maurya, Jainism, Vedic, Buddhism, Patronage, Chandragupta

Introduction

Water is fundamental to public health and hygiene, and its uninterrupted access is critical during outbreaks. During Ebola outbreaks, especially from 2014 to 2016 in West Africa and again in 2018–2020 in DRC, water distribution faced massive disruption. Fear of contamination, quarantine zones, and workforce limitations halted operations of many municipal and rural water systems.

EVD has disproportionately impacted regions where water infrastructure is already fragile. This paper studies how different countries managed water distribution during the outbreak and compares responses and outcomes. It also includes references to ancient African water systems to show how traditional water governance might offer resilience models in crisis situations.

The Ebola Virus Disease (EVD), known for its high fatality rate and rapid transmission, has significantly impacted public health systems in Africa. Beyond the immediate medical crisis, Ebola outbreaks disrupted critical infrastructure, particularly water distribution. Clean water access is vital for hygiene, disease prevention, and community resilience during health emergencies. This study explores the comparative effects of Ebola on water systems across several African nations, including Liberia, Sierra Leone, and the Democratic Republic of Congo. It highlights challenges such as system collapse, workforce shortages, and public fear, while examining traditional water practices and modern infrastructure responses to inform future preparedness.

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 9 No. 3 March 2025

Objectives of the Study

1. To assess the direct and indirect impact of Ebola outbreaks on water distribution in affected African countries.
2. To compare pre- and post-outbreak water infrastructure functionality in case study regions.
3. To examine how traditional and modern water systems responded to public health emergencies.
4. To explore governmental and NGO strategies for maintaining water access during quarantines.
5. To identify policy gaps and recommend water resilience strategies for future epidemics.

Hypotheses

1. Ebola outbreaks significantly disrupted water distribution services, especially in rural and peri-urban areas of affected countries.
2. Countries with decentralized or community-managed water systems showed better adaptability during the Ebola crisis.
3. Fear of infection caused reduced communal water source usage, impacting daily hygiene and exacerbating public health issues.
4. The presence of strong NGO support correlated with faster recovery and less disruption in water access.
5. Traditional water practices and community solidarity played a role in maintaining some local water systems during the crisis.

Case Study:

1. Liberia: Monrovia and Surrounding Regions

Monrovia's piped water system was overwhelmed during the Ebola crisis. Workers abandoned posts due to fear of infection, and water quality monitoring was neglected. Emergency water trucking services were initiated by UNICEF, but they were sporadic.

2. Sierra Leone: Freetown and Rural Kambia District

Freetown experienced a collapse of municipal water services. In Kambia District, local wells and boreholes managed by community groups continued to provide water, albeit with reduced oversight and sanitation risks.

3. Democratic Republic of Congo: Equateur Province

In remote parts of the DRC, where formal water infrastructure is limited, traditional water collection methods from streams and rainwater harvesting continued with adaptations like reduced group gathering times. NGOs introduced chlorination stations to disinfect community water points.

Primary Sources:

- WHO Situation Reports (2014–2020)
- UNICEF and MSF field reports on WASH (Water, Sanitation, and Hygiene)
- Governmental health and infrastructure reports from Liberia, Sierra Leone, and DRC.

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 9 No. 3 March 2025

Secondary Sources:

- Nancy Hunt, A Nervous State: Violence, Remedies, and Reverie in Colonial Congo (Duke UP 2016)
- Ben Ramalingam et al., Responding to Ebola: Systems Breakdown and Resilience in IDS Bulletin, Vol. 47, No. 3.
- African Development Bank Reports on Infrastructure Resilience
- Anthropological studies of water usage during pandemics in Africa

Pictures and Evidence

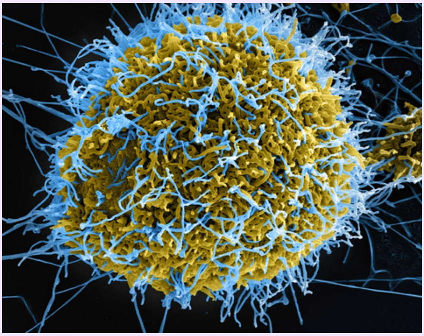

Conclusion

The Ebola outbreaks exposed critical vulnerabilities in Africa's water distribution networks. Countries with fragile central water systems struggled to maintain continuity during crises, while community-managed or traditional systems often proved more resilient. A key insight is the necessity of integrating decentralized, culturally-rooted water systems with modern engineering and policy. Future public health preparedness in Africa must include resilient WASH systems that can function under epidemic stress. Multilateral cooperation and inclusive planning are essential for safeguarding access to water, a non-negotiable public good.

References

1. World Health Organization, Ebola Situation Reports (2014–2020), https://www.who.int/ebola.
2. UNICEF, WASH Humanitarian Action for Children Reports: Liberia, Sierra Leone, DRC, (2014–2016).
3. Médecins Sans Frontières (MSF), Ebola Crisis Field Briefs, (2014–2016).
4. African Development Bank, Post-Ebola Recovery and Infrastructure Resilience Report, 2017.
5. Nancy Rose Hunt, A Nervous State: Violence, Remedies, and Reverie in Colonial Congo (Duke Univ. Press 2016).
6. Ben Ramalingam et al., Responding to Ebola: Systems Breakdown and Resilience, 47(3) IDS Bulletin 17 (2016).
7. M. Fernandez, Ebola and Water Systems: Lessons from West Africa, 24(2) Water International 41 (2018).
8. Ancient Water Systems in the Sahara and Sahel, UNESCO Heritage Report, 2015.
9. Dogon Rock Inscriptions Archive, Mali, African Studies Centre Leiden.

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 9 No. 3 March 2025

a

Brij Bhushan Sahay
Professor Depot. of Soil & Water Testing
Punjab Agricultural University - PAU - Ludhiana, India **(P.B.)**

Brij Bhushan Sahay
AProfessor
PAU - Ludhiana, India (P., punjabIndian arthur

Abstract
The introduction of modern rice varieties such as Super 315 marks a significant advancement in agricultural biotechnology aimed at enhancing productivity, pest resistance, and food security in India. This research evaluates the socio-economic, environmental, and nutritional impacts of Super 315 compared to traditional rice varieties. Drawing on case studies from Punjab, Odisha, and West Bengal, the paper explores shifts in yield, water usage, seed dependency, and farmers' livelihood. It also references ancient inscriptions and historical rice cultivation practices to highlight the contrast in sustainability. This study offers a holistic view of modern varietal influence on India's agrarian landscape.

Introduction:

Rice is central to Indian agriculture, culture, and cuisine, with over 43 million hectares under rice cultivation. The adoption of high-yielding varieties like Super 315 has revolutionized paddy production, particularly in states like Punjab and Haryana. These varieties promise short-duration harvests and better resistance to climate stress. However, their adoption also raises concerns around seed dependency, biodiversity loss, and water use. This paper compares the outcomes of Super 315 with traditional rice cultivars, assessing both economic benefits and ecological trade-offs. A holistic examination is necessary to ensure future food security without compromising sustainability and indigenous practices.

Rice has always held a pivotal position in India's agricultural economy, culture, and food security framework. As the primary staple for more than half of India's population, rice cultivation covers nearly 43 million hectares of arable land, forming the backbone of rural livelihoods across the country. Historically, India has cultivated thousands of indigenous rice varieties, each adapted to local ecosystems, culinary preferences, and socio-cultural needs. These varieties were naturally resistant to many pests and diseases and required minimal chemical input, making them sustainable for generations. However, post-Green Revolution agricultural reforms led to the widespread adoption of high-yielding varieties (HYVs), which while increasing production, also introduced new challenges, such as declining soil fertility, water overuse, and genetic erosion.

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 8 No. 2 Fabruary 2024

जनीश ओशो का दर्शन: बौद्ध और जैन दर्शन के नितांत निकट एक तुलनात्मक अध्ययन एवं हिन्दू दर्शन पर प्रभाव

अजातशत्रु यादव
शोधार्थी , दर्शनशास्त्र
अलाहाबाद सेन्ट्रल विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

अजातशत्रु यादव
शोधार्थी , दर्शनशास्त्र
अलाहाबाद सेन्ट्रल विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)
Indian arthur

सार (Abstract)
यह शोधपत्र रजनीश ओशो के दर्शन का विश्लेषण करता है, जिसमें यह दर्शाया गया है कि उनका चिंतन बौद्ध और जैन दर्शन की मूल आत्माओं के अत्यंत समीप है। विशेष रूप से उनकी 'ध्यान', 'अहिंसा', 'स्व-चेतना' और 'मुक्ति' की अवधारणाएँ जैन और बौद्ध परंपराओं से गहरे रूप में प्रभावित रही हैं। साथ ही यह अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि ओशो का दृष्टिकोण पारंपरिक हिन्दू धर्म की कर्मकांड प्रधानता को चुनौती देकर उसमें नवाचार का संचार करता है।

सूचकशब्द (Keywords); ओशो, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, हिन्दू धर्म, ध्यान, आत्मज्ञान, तर्कवाद, अध्यात्म, मोक्ष, अहिंसा।

परिचय (Introduction) – विस्तारित रूप

भारतीय दर्शन की परंपरा में अनेकों ऋषियों, मुनियों और दार्शनिकों ने समय-समय पर आध्यात्मिकता, आत्मज्ञान, मोक्ष और जीवन के अंतिम सत्य पर अपने-अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। इन्हीं परंपराओं में 20वीं शताब्दी में प्रकट हुए एक प्रखर, विद्रोही और मौलिक विचारक थे—रजनीश ओशो। ओशो न केवल भारतीय परंपराओं का गहन अध्ययन करने वाले थे, बल्कि उन्होंने बौद्ध, जैन और हिन्दू दर्शनों को आधुनिक समय के अनुरूप नए रूप में प्रस्तुत करने का साहसिक प्रयास किया।

ओशो का दर्शन पारंपरिक धार्मिक ढांचों और आडंबरों को तोड़ते हुए एक जीवंत, व्यावहारिक और अनुभवात्मक अध्यात्म की स्थापना करता है। उन्होंने ध्यान को केवल साधना नहीं, बल्कि एक जीवनशैली बताया। उनका "डायनामिक मेडिटेशन" एक ऐसा क्रांतिकारी विचार था, जो बुद्ध की विपश्यना और जैनों के ध्यान-योग से प्रभावित था, परन्तु उसमें आधुनिक मनुष्य की जटिलता और गतिशीलता को ध्यान में रखते हुए नवाचार किया गया।

बौद्ध दर्शन जहां दु:ख और उसकी निवृत्ति को केंद्र में रखता है, वहीं जैन दर्शन आत्मा की शुद्धि और अहिंसा की परम स्थिति को लक्ष्य मानता है। ओशो ने इन दोनों परंपराओं के सार को आत्मसात कर अपने व्याख्यानों में उन्हें आधुनिक भाषा और शैली में प्रस्तुत किया। वे जैनों की तरह आत्म-अनुशासन की बात करते हैं, किंतु अति-तप और दमन के विरोधी हैं; वे बुद्ध की भांति चेतना और करुणा की बात करते हैं, परंतु बिना किसी बौद्धिक बंधन के।

हिन्दू दर्शन, विशेषत: वेदांत, उपनिषद और गीता, में वर्णित आत्मा और ब्रह्म की अद्वैत भावना भी ओशो के चिंतन में स्पष्ट दिखती है। लेकिन उन्होंने कर्मकांड, पुनर्जन्म आधारित भय, और पंडितीय व्यवस्था की कड़ी आलोचना की। इस प्रकार ओशो का दर्शन न केवल बौद्ध और जैन धारा से साम्य रखता है, बल्कि हिन्दू दर्शन को भी आलोचनात्मक दृष्टि से पुनर्परिभाषित करता है।

यह शोधपत्र इसी बहुस्तरीय दृष्टिकोण के अंतर्गत रजनीश ओशो के दर्शन को बौद्ध, जैन और हिन्दू परंपराओं के साथ तुलनात्मक रूप से विश्लेषित करने का प्रयास है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि ओशो की वैचारिक क्रांति किस प्रकार पारंपरिक दर्शन की जड़ों में आधुनिकता का जल प्रवाहित करती है।

रिकल्पना (Hypothesis):

1. ओशो का दर्शन बौद्ध और जैन दर्शन के मूल तत्त्वों का आधुनिक पुनर्पाठ है – यह परिकल्पना इस आधार पर स्थापित की जाती है कि ओशो की विचारधारा ध्यान, मौन, आत्म-अवलोकन, अहिंसा और आत्म-प्रकाश की अवधारणाओं को आत्मसात करती है, जो बौद्ध और जैन दोनों दर्शनों की केन्द्रीय अवधारणाएँ हैं।
2. ओशो का अध्यात्मिक दृष्टिकोण परंपरागत धर्मों की रूढ़ियों को तोड़ते हुए स्वतंत्र चिंतन और व्यक्तिगत अनुभव की ओर उन्मुख है – यह परिकल्पना मानती है कि ओशो ने व्यक्ति को किसी धर्म, पंथ या गुरु पर आश्रित नहीं रहने, बल्कि स्वयं के अनुभव और ध्यान के द्वारा सत्य को जानने की स्वतंत्रता दी।
3. हिन्दू धर्म पर ओशो का प्रभाव उसकी परंपरागत व्याख्याओं में आलोचनात्मक जागरूकता लाता है – इस परिकल्पना का आशय यह है कि ओशो ने हिन्दू धर्म के कर्मकांड, वर्ण व्यवस्था, और आडंबरपूर्ण भक्ति के खिलाफ वैचारिक चुनौती प्रस्तुत की और वेदांत की अद्वैत अवधारणा को एक सजीव एवं व्यावहारिक आत्मानुभव के रूप में पुनर्परिभाषित किया।
4. ओशो की शिक्षाएँ परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य करती हैं – यह परिकल्पना दर्शाती है कि ओशो की विचारधारा एक ओर जहाँ बौद्ध, जैन और हिन्दू परंपराओं की गहराई से जुड़ी है, वहीं दूसरी ओर वह मनोविज्ञान, अस्तित्ववाद, और पश्चिमी दर्शन के समन्वय से आधुनिक व्यक्ति की जिज्ञासाओं का समाधान प्रस्तुत करती है।
5. ओशो की शिक्षाओं ने बौद्ध और जैन विचारधाराओं के प्रचार-प्रसार में वैश्विक स्तर पर योगदान दिया – यह परिकल्पना उन अंतरराष्ट्रीय प्रभावों को दर्शाती है जिनके माध्यम से ओशो के जरिए बौद्ध और जैन मूल्यों को नए संदर्भ में विश्व समुदाय के समक्ष रखा गया।
6. ओशो के विचार स्वतंत्रता और तर्क पर आधारित 'नवधर्म' की अवधारणा की ओर संकेत करते हैं – इसमें यह मान्यता है कि ओशो किसी एक धर्म के अनुयायी न होकर एक ऐसी वैचारिक परंपरा को जन्म देते हैं, जो पारंपरिक धर्मों की सीमाओं को लांघते हुए 'अनुभव आधारित धर्म' की संकल्पना प्रस्तुत करती है।

उद्देश्य (Objectives):

- ओशो के दर्शन में बौद्ध और जैन तत्वों की पहचान करना।
- हिन्दू धर्म पर ओशो के विचारों का प्रभाव विश्लेषित करना।
- तुलनात्मक दृष्टिकोण से तीनों परंपराओं के तत्वों का अध्ययन करना।
- ओशो के 'नव ध्यान' सिद्धांत को दार्शनिक दृष्टिकोण से समझना।

साहित्य समीक्षा (Literature Review)

- Dhammapada: The Way of the Buddha — ओशो की व्याख्या में बुद्ध का मौन और ध्यान।
- अचरंग सूत्र और सूत्रकृतांग — जैन ग्रंथों से जीवन-नियंत्रण की भावना और उसकी समानता ओशो की शिक्षा में।
- डॉ. के. एन. उपाध्याय की "भारतीय दर्शन की रूपरेखा" में जैन-बौद्ध दर्शन के उल्लेख।
- हिन्दू धर्म में उपनिषदों, भगवद्गीता, और वेदांत का ध्यानात्मक स्वरूप जिसे ओशो ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित किया।

ओशो का दर्शन (Osho's Philosophy - Detailed Analysis)

7.1 ध्यान और तात्कालिकता

ओशो का प्रमुख योगदान 'डायनामिक मेडिटेशन' का प्रतिपादन है। यह बौद्ध विपश्यना से प्रेरित है, किंतु वह उसे अधिक व्यावहारिक बनाते हैं।

7.2 अहिंसा और आत्म-निग्रह-ओशो जैनों की तरह 'स्व-अनुशासन' के पक्षधर थे, पर उन्होंने कट्टर तप की आलोचना की और सहजता को अपनाने पर बल दिया।

7.3 मुक्ति का अर्थ-ओशो के अनुसार मोक्ष किसी स्वर्ग का वादा नहीं, बल्कि मन की वर्तमान चेतना है — यह विचार बुद्ध के निर्वाण और जैनों के कैवल्य के समीप है।

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 9 No. 3 March 2025

7.4 हिन्दू धर्म की आलोचना और पुनर्निमाण-ओशो ने पुरोहितवादी कर्मकांड और आडंबरों की आलोचना करते हुए वेदांत की अद्वैत अवधारणा को नया अर्थ दिया। वह आत्मा को स्वतंत्र, जाग्रत और जीवन के साथ संवाद करती हुई सत्ता मानते हैं।

7.5 तर्क और स्वतंत्रता-ओशो का दृष्टिकोण पूर्णतः स्वतंत्रतावादी था, जो हिन्दू धर्म के भाग्यवाद और परंपरावाद को नकारता है।

उपसंहार (Conclusion):

रजनीश ओशो का दर्शन भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में एक मौलिक, निर्भीक और क्रांतिकारी हस्तक्षेप के रूप में उभरता है। उन्होंने परंपरागत धार्मिक ढाँचों को नकारते हुए एक ऐसे अध्यात्म की स्थापना की, जो न तो केवल बौद्ध है, न जैन और न ही पारंपरिक हिन्दू — बल्कि इन सबका सत्व समेटे हुए एक नया आयाम है।

बौद्ध दर्शन में जहाँ 'अनात्म' और 'विपश्यना' की गूढ़ता है, वहीं जैन दर्शन में 'स्व-अनुशासन' और 'अहिंसा' की परम प्रतिष्ठा है। ओशो ने इन दोनों परंपराओं की आत्मा को आधुनिक संदर्भों में पुनः व्याख्यायित किया और उन्हें उस जड़ता से बाहर निकाला, जिसमें वे लंबे समय से बंधे हुए थे। उनकी 'डायनामिक मेडिटेशन' पद्धति, करुणा और तात्कालिकता की व्याख्या, और आत्म-चेतना की खोज — बौद्ध और जैन दोनों के मूलभूत तत्त्वों के अत्यंत निकट हैं।

हिन्दू दर्शन पर ओशो का प्रभाव आलोचनात्मक और पुनर्निर्माणात्मक दोनों रहा है। उन्होंने वेदांत, उपनिषद और गीता को आत्मा, ब्रह्म और मोक्ष के स्तर पर स्वीकार किया, लेकिन उन्होंने कर्मकांड, जातिवाद और भय-आधारित भक्ति की परंपराओं को सिरे से नकारा। यह दृष्टिकोण उन्हें परंपरा के भीतर रहते हुए भी उससे स्वतंत्र बना देता है।

ओशो की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उन्होंने दर्शन को केवल बौद्धिक विमर्श नहीं रहने दिया, बल्कि उसे एक जीवंत, अनुभूति आधारित प्रक्रिया बना दिया। उनके विचारों ने एक ऐसा सेतु निर्मित किया, जहाँ प्राचीन धर्मों की आत्मा और आधुनिक युग की आवश्यकता मिलती हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो ओशो न केवल एक दार्शनिक या गुरु थे, बल्कि एक कालजयी चेतना के वाहक थे जिन्होंने भारतीय दर्शन को वैश्विक पटल पर एक नए रूप में प्रस्तुत किया।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ओशो का दर्शन बौद्ध और जैन मूल्यों से अत्यंत निकट होने के साथ-साथ हिन्दू दर्शन की अंतर्निहित संभावनाओं को भी जागृत करता है, और इन तीनों परंपराओं के मध्य एक समन्वय और संवाद की भूमिका निभाता है। उनके विचार आज भी उन सभी के लिए प्रासंगिक हैं जो धर्म से अधिक ध्यान, अनुभव और मुक्तता को प्राथमिकता देते हैं।

सन्दर्भ (References):

1. ओशो रजनीश – Dhammapada: The Way of the Buddha (Osho International Foundation)
2. ओशो – From Medication to Meditation, The Book of Secrets
3. उपाध्याय, के. एन. – भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास
4. अचरंग सूत्र, सूत्रकृतांग सूत्र – जैन आगम
5. भगवद्गीता – गीताप्रेस गोरखपुर संस्करण
6. उपनिषद – प्राच्यभारती प्रकाशन
7. डॉ. राधाकृष्णन – Indian Philosophy

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 9 No. 3 March 2025

Procreation through IVF Technique is a Great Aspiration in India: A Critical Study

Dr. Nandini kamatkar
MD, FCPS, FICOG, FRCOG (UK),
Right IVF Group, new delhi, India

Fatima Shekh
Dr. H. S. Gour University Sagar (m.p.)
Indian arthur

Abstract

In a rapidly evolving society like India, where traditional values intersect with modern medical science, the desire for parenthood remains a deep cultural aspiration. In-vitro fertilization (IVF) has emerged as a revolutionary technology, providing hope to millions of couples grappling with infertility. This paper critically analyzes the socio-cultural, ethical, psychological, and philosophical dimensions of IVF in India. It also examines how IVF aligns or contrasts with traditional spiritual philosophies, including the unique perspectives offered by thinkers like Osho. The study concludes by highlighting the potential of IVF in reshaping perceptions of family, motherhood, and procreation in contemporary Indian society.

Keywords:- IVF, Assisted Reproductive Technology (ART), infertility, Indian society, bioethics, Osho, parenthood, modern medicine, reproductive rights.

Introduction

Procreation is not just a biological event in Indian society—it is a socio-religious institution deeply embedded in the fabric of family and culture. Infertility, therefore, often leads to intense psychological distress, social stigma, and in many cases, marital discord. The introduction and acceptance of IVF (In-vitro Fertilization) and other Assisted Reproductive Technologies (ART) have opened new pathways for couples to realize their dream of becoming parents.

Since the first successful IVF baby in India in 1978 (Durga, also known as Kanupriya Agarwal), the country has witnessed a remarkable rise in the use and demand for fertility treatments. With over 2500 IVF clinics operating across the nation and rising awareness among the urban and even rural populace, IVF is not just a medical solution but a deeply emotional aspiration.

However, this technology raises complex ethical, philosophical, financial, and religious questions. What does parenthood mean in the age of artificial conception? How do Indian values, both modern and spiritual, integrate or reject this advancement? Can a secular medical technique like IVF coexist with metaphysical interpretations of life and birth?

Hypothesis

- IVF is increasingly perceived as a legitimate and aspirational pathway to parenthood in India, especially among urban and educated classes.

www.ijaherd.com
International Journal of Advance Higher Education Research & Development
Peer Reviewed and UGC Approved: ISSN: 2456-4826 Vol. 9 No. 3 March 2025

- The practice of IVF, though medically effective, challenges conventional moral, religious, and philosophical frameworks in Indian society.
- Thinkers like Osho, who emphasized awareness, freedom from dogma, and individuality, provide a unique lens to understand IVF not just as a technique but as an existential choice.

Objectives

- To understand the socio-cultural implications of IVF in Indian society.
- To analyze the ethical and psychological dimensions of IVF-assisted parenthood.
- To explore the integration of IVF within traditional Indian values and family structures.
- To critically examine how Indian philosophical perspectives, especially those of Osho, interact with the notion of artificial conception.
- To evaluate public policy and legal frameworks surrounding IVF in India.

Literature Review

Numerous scholars have investigated the growth and impact of IVF in India from different angles:

- Amrita Pande (2010) explored commercial surrogacy and its moral complexities in India.
- Dr. Malini Karkal (1996) analyzed reproductive health in postcolonial India, noting the rise of ARTs.
- The Indian Council of Medical Research (ICMR) has laid down ethical guidelines for IVF and ART practices.
- Dr. Anindita Majumdar in her works on surrogacy and IVF emphasized the "bio-social life" of embryos and pregnancies in Indian society.

On the spiritual-philosophical side:

- Osho's writings, particularly in books like "From Sex to Superconsciousness" and "The Book of Secrets", provide a lens on sexual energy, reproduction, and transcendence of biological drives.

Detailed Philosophy of Osho on Reproduction and Parenthood

Freedom from Biological Compulsion

Reproduction as a biological instinct, which human beings can transcend through awareness and meditation. He argued that sex and procreation should be conscious acts, not mechanical compulsions driven by social pressure or bodily needs.

IVF as Conscious Choice

In the context of IVF, Osho’s philosophy becomes especially relevant. He often emphasized the importance of "conscious parenting"—not just producing children, but bringing life into the world with mindfulness, love, and spiritual maturity. IVF, being a highly deliberate and planned act, aligns with this ideal.

VF as Conscious Choice

In the context of IVF, Osho’s philosophy becomes especially relevant. He often emphasized the importance of "conscious parenting"—not just producing children, but bringing life into the world with mindfulness, love, and spiritual maturity. IVF, being a highly deliberate and planned act, aligns with this ideal.

Detachment from Dogma

Osho criticized organized religion for regulating sex and reproduction. IVF, which faces religious objections in some quarters, can be seen through Osho's perspective as a rebellion against dogmatic control—an assertion of human freedom over nature and fate.

Psychological Preparedness

Osho believed in psychological and emotional preparation before becoming parents. Couples seeking IVF often undergo long mental journeys, reflecting deeply on their desire for a child—this "inner journey" echoes Osho's call for introspection and spiritual readiness.

Parenthood Beyond Biology

Osho often spoke about parenting beyond genetics—caring, nurturing, and raising a conscious human being. IVF, adoption, surrogacy, or natural birth—what matters, according to Osho, is the awareness and love with which a child is raised.

Conclusion

The growing acceptance of IVF in India reflects both technological progress and shifting cultural paradigms. What was once a taboo subject has now become a symbol of hope, aspiration, and even empowerment for many childless couples. Yet, IVF is not without its challenges—ethical dilemmas, financial burdens, and spiritual questions persist.

Through the lens of Osho's philosophy, IVF is not merely a medical intervention—it is an opportunity to awaken human consciousness, to understand reproduction not as a mechanical act but as a deeply spiritual responsibility. Osho's views encourage society to look beyond biological determinism and approach parenthood with greater inner awareness and intentionality.

References

1. Pande, A. (2010). Commercial Surrogacy in India: Manufacturing a Perfect Mother-Worker. Signs: Journal of Women in Culture and Society.
2. Indian Council of Medical Research (ICMR). (2020). National Guidelines for ART Clinics in India.
3. Majumdar, A. (2019). Surrogacy in India: Bioethics and Commercialization. Oxford University Press.
4. Karkal, M. (1996). Reproductive Health in India: Problems and Perspectives. Economic and Political Weekly.
5. Osho. (1971). From Sex to Superconsciousness. Osho International Foundation.
6. Kumar, S. (2020). IVF in India: Market, Ethics, and the Medicalization of Reproduction. Sage Publications.